गणपतभाई महीजीभाई सोलंकी

बनाम

गुजरात राज्य व अन्य

(सिविल अपील सं0 1727/2008)

04 मार्च 2008

(न्यायाधिपति श्री एस. बी. सिन्हा व न्यायाधिपति श्री वी.एस.सिरपुरकर)

सिविल प्रक्रिया संहित, 1908:

विलम्ब के लिए क्षमा - अधिशेष भूमि - अपीलीय प्राधिकरण द्वारा वर्ष 1988 में खारिज की गयी अपील के विरूद्ध अपील - समाज के कमजोर वर्ग के लिए अधिशेष भूमि का आवंटन - मूल भू-स्वामी द्वारा 1995 में पेश एक अन्य अपील को अपीलीय प्राधिकरण द्वारा आंशिक रूप से स्वीकार किया - मूल भू-स्वामी द्वारा वाद भूमि पर कब्जा करने बाबत अंतरिम निषेधाज्ञा की मांग करते हुए राज्य के विरूद्ध मुकदमें दायर करना - महत्वपूर्ण तथ्य छिपाने व न्यायालय को गुमराह करने के आधार पर निचली अदालत द्वारा मुकदमा खारिज किया - उच्च न्यायालय द्वारा पुष्टि करना - शुद्धता - अपील करने पर, अभिनिर्धारित: धोखाधडी सभी महत्वपूर्ण कृत्यों को दूषित कर देती है - यदि न्यायालय से धोखाधडी कर कोई आदेश प्राप्त किया जाता है तो ऐसे आदेश को अपास्त करने के लिए प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के अनुपालन की भी आवश्यकता नहीं है - यदि कोई परस्पर विरोधी हित है तो न्यायालय इक्विटी को समायोजित कर सकता है लेकिन किसी भी परिस्थिति में मामले की योग्यता पर विचार करने से इन्कार नहीं करना चाहिए, विशेषतः जब इसका ध्यान महत्वपूर्ण तथ्यों को छिपाने या

न्यायालय के साथ धोखाधडी करने की ओर आकर्षित किया गया हो - विलम्ब के लिए क्षमा पर विचार करते समय न्याय प्रशासन के सिद्धांत का पालन करना चाहिए - इसके संदर्भ में कानूनी प्रक्रिया सीमित होनी चाहिए - काफी लम्बे समय बाद मामले का दोबारा खुलना सिद्धांत के विपरीत है - हालांकि संविधान के अनुच्छेद 136 के तहत शक्ति का प्रयोग करते हुए सर्वोच्च न्यायालय द्वारा आक्षेपित आदेश में हस्तक्षेप करना उचित नहीं होगा - न्याय प्रशासन के सिद्धांत - आवश्यकता - भारत का संविधान, 1950 - अनुच्छेद 136 - विस्तार- शहरी भूमि सीमा अधिनियम, 1976 मय निरसन अधिनियम, 1999

इस अपील में विचार करने हेतु जो प्रश्न उत्पन्न हुआ वह यह था कि क्या किसी महत्वपूर्ण तथ्य को छिपाने से पुनरीक्षण याचिका दायर करने में हुयी देरी को क्षमा करने के लिए प्रार्थनापत्र की अनुमति देना आवश्यक होगा?

अपीलार्थी ने तर्क दिया कि उच्च न्यायालय ने आक्षेपित निर्णय को पारित करने में गम्भीर त्रुटि की है जिसके कारण न केवल 2205 दिनों की देरी को माफ कर दिया गया है बल्कि एक मुकदमें को पुनर्जीवित करने की मांग की गयी है जो राज्य के आचरण और बाद की घटनाओं को ध्यान में रखते हुए निरर्थकता होगी।

प्रत्यर्थी ने कथन किया है कि अपीलार्थी ने अदालत के साथ धोखाधडी की है क्योंकि उसने मूल आदेश दिनांकित 12.07.1984 के पारित होने के 11 वर्ष बाद एक अन्य अपील पेश करते समय अपीलीय आदेश दिनांकित 04.01.1988 का महत्वपूर्ण तथ्य छिपाया था।

अपील खारिज करते हुए न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया:

1.1 यह अदालत इस तथ्य से अनजान नहीं है कि राज्य के अधिकारियों ने स्थिति के साथ पूरी तरह से खिलवाड किया है। अपनी कार्यवाही से इसने बाद की घटनाओं को होने दिया। (पैरा-13) (945-बी)

1.2 यह एक सुस्थापित सिद्धांत है कि धोखाधडी सभी गंभीर कृत्यों को दूषित कर देती है। यदि कोई आदेश धोखाधडी से प्राप्त किया गया है तो उसे रद्द करने के लिए प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों की पालना करना आवश्यक नहीं है। (पैरा 13) (945-सी, डी)

टी. विजेन्द्रदास व अन्य बनाम एम. सुब्रमनिअम व अन्य 2007 (12) स्केल 1 - न्यायिक दृष्टांत का आश्रय लिया गया।

1.3 यदि कोई परस्पर विरोधी हित है तो न्यायालय इक्विटी को समायोजित कर सकता है लेकिन किसी भी परिस्थिति में मामले की योग्यता पर विचार करने से इन्कार नहीं करना चाहिए, विशेषकर जब इसका ध्यान महत्वपूर्ण तथ्यों को छिपाये जाने या न्यायालय के साथ धोखाधडी किये जाने की ओर आकर्षित किया गया हो। उपरोक्त उद्देश्य के लिए न्यायालय को पक्षकारों के सम्बन्धित अधिकारों पर विचार करना पड सकता है। शहरी भूमि सीमा अधिनियम की धारा 23 के तहत बताए गए सामाजिक न्याय के सिद्धांत की पालना करना व निर्णय को उनके तार्किक निष्कर्ष तक पहुंचाना राज्य का संवैधानिक कर्त्तव्य /दायित्व है। (पैरा-14) (945-जी: 946-ए, बी)

2.1 मौजूदा मामले में आवंटियों ने वैधानिक अधिकार प्राप्त कर लिया है। केवल इसलिए कि राज्य को निरसित अधिनियम के तहत प्रावधानों की तथ्यात्मक स्थिति और / या कानूनी निहितार्थ के बारे में जानकारी नहीं थी, उच्च न्यायालय से रिट याचिका वापस ले ली गयी थी जो अपने आप में आवंटियों को उक्त भूमि धारण करने

के कानूनी अधिकार से वंचित करने के लिए पर्याप्त नहीं हो सकता है। (पैरा-15) (946-बी, सी)

2.2 अपील न्यायालय ने स्मिथ बनाम क्वेरनर सीमेन्टेशन फाउण्डेशन लि0 मामले में इस आधार पर देरी को क्षमा कर दिया था कि अपीलकर्ता के पास एक स्वतंत्र और निष्पक्ष न्यायाधिकरण के समक्ष अपने मुकदमें का फैसला कराने का मानवीय अधिकार था और चूंकि न्यायाधीश के पक्षपाती होने के कारण अपील पेश करने में हुयी देरी को यह कहते हुए माफ कर दिया था कि विचार किये जाने वाला पहला मानदंड न्याय प्रशासन का हित है। यह आमतौर पर मामले में जब कभी समय बढाने की मांग की गयी उसके विरूद्ध दृढता से प्रभावी होगा। न्याय प्रशासन का यह एक महत्वपूर्ण सिद्धांत है कि कानूनी प्रक्रिया सीमित होनी चाहिए। चार साल की देरी के बाद मामले को फिर से खोलना स्पष्ट रूप से उस सिद्धांत के विपरीत है। लेकिन यह एक ऐसा मामला है जहां अपीलकर्ता को उस अधिकार से वंचित कर दिया जो मानवाधिकार और मौलिक स्वतंत्रता के संरक्षण हेतु यूरोपीय समझौता, 1950 का अनुच्छेद 6 उसे एक स्वतंत्र और निष्पक्ष न्यायाधिकरण के समक्ष सुनवाई का अधिकार देता है। जहां तक न्याय प्रशासन का सम्बंध है, यह एक सर्वोपरि विचार है। उपरोक्त कारणों से, इस न्यायालय की राय है कि मामले की योग्यता के साथ-साथ इक्विटी के समायोजन के सम्बन्ध में प्रश्न पर भी उच्च न्यायालय द्वारा विचार किया जा सकता है। हालांकि, भारत के संविधान के अनुच्छेद 136 में देय क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते हुए यह न्यायालय आक्षेपित निर्णय में हस्तक्षेप करने से इन्कार करता है। (पैरा- 17 व 18) (946-डी, ई, एफ, जीः 947-ए, बी)

स्मिथ बनाम क्वेरनर सीमेन्टेशन फाउण्डेशन लि. 2006 (3) ऑल ई आर 593 - संदर्भित न्यायिक दृष्टांत।

सिविल अपीलीय क्षेत्राधिकार: सिविल अपील सं0 1727/2008

जो गुजराज उच्च न्यायालय द्वारा एल.पी.ए संख्या 313/2006 में पारित निर्णय व आदेश दिनांक 12.07.2006 से उत्पन्न है।

अपीलार्थी की ओर से - अनिरूद्ध पी. मयी

प्रत्यर्थी की ओर से - हेमन्तिका वाही, माधवी दीवान व शिवांगी

निर्णय एस. बी. सिन्हा, न्यायाधिपति द्वारा दिया गया ।

अनुमति दी गयी।

1. यहां यह मुख्य प्रश्न है कि क्या किसी महत्वपूर्ण तथ्य को छिपाने से पुनरीक्षा प्रार्थनापत्र पेश करने में हुयी 2205 दिनों की देरी को क्षमा करने के लिए आवेदन पेश करने हेतु अनुमति दी जाएगी ?

2. अपीलकर्ता वडोदरा शहर में स्थित जमीन के विभिन्न हिस्सों का मालिक था। सक्षम प्राधिकारी द्वारा शहरी भूमि सीमा अधिनियम, 1976 (संक्षेप धिनियम') के प्रावधानों के तहत मजालापुर में सर्वेक्षण संख्या 345, 347/1 व 267 में स्थित 10807 वर्गमीटर भूमि को अधिशेष भूमि घोषित किया गया था। उसके विरूद्ध की गयी अपील को अपीलीय प्राधिकारी द्वारा दिनांक 04.01.1988 के आदेश के जरिये यह कहते हुए खारिज कर दिया गया था-

> ''जैसा कि ऊपर चर्चा की गयी है, अपीलकर्ता का कोई भी तर्क स्वीकार्य नहीं है और सक्षम प्राधिकारी द्वारा पारित आदेश में हस्तक्षेप करने का कोई कारण नहीं है और इसलिए निम्नलिखित आदेश पारित किया जाता है।

अपीलार्थी की अपील खारिज की जाती है। सक्षम प्राधिकारी द्वारा पारित आक्षेपित आदेश दिनांक 12/07/1984 की पुष्टि की जाती है। इस कार्यालय द्वारा पारित निषेधाज्ञा आदेश निरस्त किया जाता है। आदेश की सूचना पक्षों को दी जाए।"

3. इसमें अपीलकर्ताओं द्वारा उठाए गए सभी तर्कों पर विचार किया गया। इसे अंतिम रूप देने की अनुमति दी गई।

4. अधिनियम की धारा 10 (3) के तहत अधिसूचना दिनांक 04.05.1989 को आधिकारित राजपत्र में प्रकाशित किया गया। धारा 10 (5) के तहत दिनांक 23.08.1989 को एक और अधिसूचना जारी की गयी थी। कथित तौर पर, अपीलकर्ता द्वारा उसमें दिये गये निर्देशों का पालन नहीं किया गया। सम्पत्तियों का कब्जा दिनांक 20.04.1992 को लेना बताया गया है। अधिनियम की धारा 23 के तहत अधिशेष भूमि कमजोर वर्गों के सदस्यों को आवंटित किया जाना बताया गया है। अपीलकर्ता द्वारा मुकदमेबाजी का एक और दौर शुरू किया गया। वर्ष 1995 में अधिनियम की धारा 33 के संदर्भ में अपीलीय प्राधिकारी के समक्ष एक और अपील दायर किया जाना बताया गया है। उक्त अपील पर विचार किया गया। दिनांक 30.3.1995 के निर्णय एवं आदेश द्वारा केवल सर्वे क्रमांक 267 में स्थित 6224 वर्गमीटर भूमि को अधिशेष भूमि घोषित किया गया।

5. प्रतिवादी राज्य ने यह अभिकथन किया है कि ट्रिब्यूनल को पहले की अपील के परिणाम के बारे में सूचित नहीं किया गया था और दिनांक 30.3.1995 का उक्त आदेश एकपक्षीय पारित कर दिया गया था। यहां तक कि आवंटियों को कोई नोटिस भी नहीं दिया गया। एक आवंटी द्वारा उच्च न्यायालय के समक्ष एक रिट याचिका दायर की गई थी जिसमें उसे वैकल्पिक भूमि आवंटित करने का निर्देश जारी

किया गया था। राज्य ने भी इसके खिलाफ एक रिट याचिका दायर की थी जो एस.सी.ए संख्या 100/1996 के रूप में चिह्नित की गयी। अपीलकर्ता द्वारा सिविल जज, सीनियर डिवीजन, वडोदरा के न्यायालय में वर्ष 1999 और 2001 में दो दीवानी मुकदमें दीवानी वाद संख्या 935/1999 व 190/2001 दायर करना बताया गया है जिनमें राज्य के विरुद्ध भूमि पर कब्ज़ा करने से निषेधाज्ञा की मांग की गयी है। हालाँकि, अंतरिम निषेधाज्ञा का आवेदन खारिज कर दिया गया था। उक्त अंतरिम आदेश में, कथित तौर पर यह निष्कर्ष निकाला गया था कि अपीलकर्ता ने महत्वपूर्ण तथ्यों को छुपाया था और अदालत को गुमराह किया था।

6. हालाँकि, वर्ष 1999 में इस अधिनियम को रद्द (रिपील) कर दिया गया था। इसके आधार पर सहायक सरकारी वकील द्वारा स्पेशल सिविल एप्लीकेशन संख्या 100/1996 में उक्त प्रार्थनापत्र संख्या 100/1996 को वापिस लेते हुए कथित बयान दिया गया था। उच्च न्यायालय ने अपने आदेश दिनांक 15.6.1999 में यह दर्ज किया;

> "याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री दवे का कथन है कि शहरी भूमि (सीमा और विनियमन) निरसन अधिनियम, 1999 के मद्देनजर, वर्तमान याचिका नहीं टिक पाती है। नतीजतन, इसका तदनुसार निस्तारण किया गया। बिना किसी व्यय आदेश के नियम का निर्वहन कर दिया गया। अस्थायी अनुतोष (एड-इन्टरिम रिलीफ) रद्द किया गया।"

इसके बाद आवंटियों को मकान खाली करने के लिए नोटिस जारी किए गए। अपीलकर्ता और राज्य के अधिकारियों के बीच कई पत्र व्यवहार हुए। कथित तौर पर उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश दिनांक 23.03.2000 को राज्य द्वारा स्वीकार कर लिया गया। यह रूख अपनाया गया कि उच्च न्यायालय के दिनांक 15.6.1999 के उक्त आदेश को चुनौती नहीं दी जाएगी।

7. अपीलकर्ता ने दिनांक 20.5.2000 के पंजीकृत विक्रय विलेख द्वारा भूमि किसी दिनेशबाई छोटाभाई पटेल को बेच दी। उक्त विक्रेता ने 25.1.2001 को फिर से उक्त जमीन का आधा हिस्सा संजय कुमार मणिलाल पटेल के पक्ष में बेच दिया। भवनों के निर्माण हेतु अनुमति दे दी गई।

8. आवंटियों ने उच्च न्यायालय के समक्ष एक रिट याचिका दायर की थी। इसमें राज्य ने ट्रिब्यूनल के आदेश दिनांक 31.3.1995 को स्वीकार करते हुए एक जवाबी हलफनामा प्रस्तुत किया। हालाँकि, कुछ दिनों के बाद, उक्त आदेश दिनांक 15.06.199 को प्रत्याहृत (रिकॉल) हेतु एक प्रार्थनपत्र पेश किया जिस पर नोटिस जारी किया गया।

9. निर्णय दिनांक 11.10.2005 के आधार पर, उच्च न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश ने ठोस कारण बताते हुए उक्त आवेदन पत्र को स्वीकार कर लिया। उच्च न्यायालय की खण्डपीठ ने अपीलकर्ता द्वारा इसके खिलाफ की गई लेैटर्स पेटेंट अपील को आक्षेपित निर्णय के कारण, एकल न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश के साथ अपनी सहमति व्यक्त करते हुए, खारिज कर दिया।

10. अपीलकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान वकील श्री अनिरुद्ध पी. माई ने आग्रह किया कि उच्च न्यायालय ने आक्षेपित निर्णय पारित करने में गंभीर त्रुटि की है जिसके कारण न केवल 2205 दिनों की देरी को माफ कर दिया गया बल्कि एक मुकदमा को पुनर्जीवित करने की मांग की गई है जो राज्य के आचरण और 15.6.1999 के बाद की घटनाओं को ध्यान में रखते हुए निरर्थक होगी।

11. दूसरी ओर, प्रतिवादी की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता सुश्री माधवी दीवान ने आग्रह किया कि अपीलकर्ता ने न्यायालय के साथ धोखाधड़ी की है क्योंकि उसने मूल आदेश दिनांक 12.07.1984 के पारित होने के 11 साल बाद एक अन्य अपील

पेश करते समय दिनांक 4.1.1988 के अपीलीय आदेश पारित होने का तथ्य छिपाया था।

विद्वान वकील का कहना है कि किसी भी स्तर पर अपीलकर्ता द्वारा यह बात राज्य के अधिकारियों और उच्च न्यायालय के ध्यान में नहीं लाई गयी कि दिनांक 12.7.1984 का आदेश अंतिम रूप ले चुका है। इसके अलावा, यह तर्क दिया गया कि सहायक सरकारी वकील द्वारा जो रुख अपनाया गया वह राज्य के लिए बाध्यकारी नहीं था क्योंकि ऐसे मामले जिनमें भूमि के मालिकों से कब्जा ले लिया गया था, उन्हें 1999 के अधिनियम के प्रावधानों के तहत स्पष्ट रूप से बचाया गया है।

12. उक्त कार्यवाही में पारित अंतिम आदेश के अनुसरण में अधिनियम के प्रावधानों के तहत निर्विवाद रूप से कदम उठाए गए, क्योंकि न केवल कुछ भूमि को अधिशेष घोषित कर दिय गया बल्कि उसके खिलाफ की गई अपील को खारिज कर दिया गया, कब्जा ले लिया गया और यहां तक समाज के कमजोर वर्ग के सदस्यों के पक्ष में आवंटन भी कर दिया गया था।

हम देख सकते हैं कि भूमि के कुछ हिस्सों का कब्ज़ा 15 व्यक्तियों को सौंप भी दिया गया था।

यदि राज्य का यह कहना सही है कि मामले को देखते हुए, 1999 अधिनियम का कोई उपयोग नहीं होगा, तो निर्विवाद रूप से, किसी वकील द्वारा दी गई कोई भी गलत सुविधा राज्य पर बाध्यकारी नहीं होगी।

हरियाणा राज्य व अन्य बनाम एम.पी. मोहला (2007) 1 एससीसी 457, में यह अभिनिर्धारित किया गया हैः

"25. किसी स्वीकारोक्ति के प्रभाव के संबंध में कानून भी अब एकीकृत नहीं है। जबकि किसी पक्ष को उसी कार्यवाही के बाद के चरण में अपनी स्वीकारोक्ति से मुकरने की अनुमति नहीं दी जा सकती है, यह भी सामान्य बात है कि कानूनी के विपरीत की गयी स्वीकारोक्ति राज्य पर बाध्यकारी नहीं होगी

13. हम इस तथ्य से अनजान नहीं हैं कि राज्य के अधिकारियों ने स्थिति के साथ पूरी तरह से खिलवाड़ किया है। अपनी कार्यवाही से, इसने बाद की घटनाओं को घटित होने दिया, अर्थात ज़मीनों की बिक्री बढ़ गई है, निर्माण कार्य शुरू हो गए, लेकिन हमारे विचार के लिए यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि क्या ऐसी स्थिति में भी, यह न्यायालय तथ्य को छिपाने की अनुमति देगा।

यह अब एक सुस्थापित सिद्धांत है कि धोखाधड़ी सभी गंभीर कृत्यों को दूषित कर देती है। यदि कोई आदेश धोखाधड़ी से प्राप्त किया गया है, तो उसे रद्द करने के लिए प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों की पालना करना आवश्यक नहीं है।

टी. विजेंद्रदास व अन्य बनाम एम. सुब्रमण्यन व अन्य 2007 (12) स्केल 1 में इस न्यायालय ने यह माना है कि-

"21.....जब किसी अदालत में कोई धोखाधड़ी की जाती है, तो उसे अमान्य कर दिया जाता है। शून्यता के मामले में, प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों की पालना करने की आवश्यकता नहीं होती है। (केंद्रीय विद्यालय संगठन व अन्य बनाम अजय कुमार दास व अन्य (2002) 4 एससीसी 503 तथा ए. उमारानी बनाम रजिस्ट्रार, सहकारी समितियां व अन्य (2004) 7 एससीसी 112-पैरा 65)

22. एक बार जब यह मान लिया जाता है कि धोखाधड़ी के कारण, एक डिक्री को शून्य बना दिया जाता है, जिससे उसके बाद की गई सभी कार्यवाही भी अमान्य हो जाती है, तो हमारी राय में किसी पक्षकार को लाभ प्रदान करना पूरी तरह से असमान होगा, जो उसके अंतर्गत एक लाभार्थी है....."

14. किसी क़ानून के उद्देश्य और तात्पर्य को प्रभावी बनाया जाना चाहिए। यदि कोई परस्पर विरोधी हित है, तो न्यायालय इक्विटी को समायोजित कर सकता है, लेकिन किसी भी परिस्थिति में उसे मामले की योग्यता पर विचार करने से इनकार नहीं करना चाहिए, जब उसका ध्यान महत्वपूर्ण तथ्यों को छिपाने या न्यायालय के साथ धोखाधड़ी करने की ओर आकर्षित किया गया हो।

उपरोक्त उद्देश्य के लिए अदालतों को पक्षकारों के संबंधित अधिकारों पर विचार करना पड़ सकता है। अधिनियम की धारा 23 के तहत बताए गए सामाजिक न्याय के सिद्धांत की पालना करना और निर्णय को तार्किक निष्कर्ष तक पहुंचाना राज्य का संवैधानिक कर्तव्य/दायित्व है।

15. आवंटियों को वैधानिक अधिकार प्राप्त है। केवल इसलिए कि राज्य को अधिनियम, 1999 के तहत प्रावधानों की तथ्यात्मक स्थिति और / या कानूनी निहितार्थ के बारे में जानकारी नहीं थी जिसके कारण उच्च न्यायालय से रिट याचिका वापस ले ली गयी थी, जो अपने आप में आवंटियों को उक्त भूमि धारण करने के कानूनी अधिकार से वंचित करने के लिए पर्याप्त नहीं हो सकता है।

16. प्रकृति की इस विशेष स्थिति को एक विशेष आदेश की आवश्यकता होगी।

17. विलंब की क्षमा का आदेश पारित करने के मामले में, हम देख सकते हैं कि अपील न्यायालय ने स्मिथ बनाम क्वेरनर सीमेन्टेशन फाउण्डेशन लि. (बार काउंसिल का हस्तक्षेप) (2006 3 ऑल ई आर 593) में इस आधार पर देरी को माफ कर दिया कि अपीलकर्ता के पास एक स्वतंत्र और निष्पक्ष न्यायाधिकरण के समक्ष अपने मुकदमे का फैसला कराने का मानवीय अधिकार था और चूंकि न्यायाधीश के पक्षपाती होने पर अपील पेश करने में हुयी देरी को यह कहते हुए माफ कर दिया कि-

> "41. विचार किया जाने वाला पहला मानदंड, (क) न्याय प्रशासन के हित हैं। आम तौर पर इस मामले में जब भी समय बढाने हेतु मांग की जावेगी तो ये दृढता से प्रभावी होगा। यह न्याय प्रशासन का एक महत्वपूर्ण सिद्धांत है कि कानूनी प्रक्रिया सीमित होनी चाहिए। चार साल की देरी के बाद इस मामले को फिर से खोलना स्पष्ट रूप से उस सिद्धांत के विपरीत है। लेकिन यह एक ऐसा मामला है जहां श्री स्मिथ को उस अधिकार से वंचित कर दिया जो मानवाधिकार और मौलिक स्वतंत्रता के संरक्षण हेतु यूरोपीय समझौता, 1950 का अनुच्छेद 6 उसे एक स्वतंत्र और निष्पक्ष न्यायाधिकरण के समक्ष सुनवाई का अधिकार देता है (जैसा कि मानवाधिकार अधिनियम 1988 की अनुसूची 1 में निर्धातिर है)। जहां तक न्याय प्रशासन का संबंध है, हमारे विचार में यह सर्वोपरि विचार है।"

18. उपरोक्त कारणों से, हमारी राय है कि मामले की योग्यता के साथ-साथ इक्विटी के समायोजन के संबंध में प्रश्न पर उच्च न्यायालय द्वारा विचार किया जा सकता है। हम, भारत के संविधान के अनुच्छेद 136 में अपने क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते हुए आक्षेपित निर्णय में हस्तक्षेप करने से इन्कार करते हैं।

अपील सव्यय खारिज की जाती है। अधिवक्ता की फीस 10,000/-रू0 निर्धारित की गयी।

अपील खारिज।

नोट- यह अनुवाद आर्टिफिशियल इन्टेलिजेन्स टूल्स सहायता से अनुवादक न्यायिक अधिकारी अतुल कुमार सक्सेना, (आर.जे.एस.) के द्वारा किया गया।

अस्वीकरण: यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के सीमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रामाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।